जीवन की उत्पत्ति में किसी भी बाहरी या निश्चित मनसूबों का कोई हाथ नहीं, हैं तो बस अनन्त कयास और सम्भावनाएँ; यह स्थापित कर डार्विन ने *हम कौन हैं, कहाँ से आए हैं,* जैसे सवालों को समझने में हमारी बड़ी मदद की।

दरअसल, उनके अद्‌भुत काम के बूते विज्ञान ने एक बहुत बड़ी छलांग लगाई। खासकर, उनकी पुस्तक *ऑन द ओरिजन ऑफ स्पीशीज़* के छपने के बाद से पिछले डेढ़ सौ सालों में। *हम कौन हैं, कहाँ से आए हैं, किसलिए जीते हैं, किसके लिए जीते हैं* जैसे बारहा बुनियादी सवालों को समझने में डार्विन ने हमारी बड़ी मदद की। उनके काम के आधार पर ही हम समझ पाए कि विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं व भौतिक प्रक्रियाओं के चलते जीवन की उत्पत्ति (और वह भी अ-जीवन से) कैसे हुई। डार्विन के बाद से ही हमारी समझ और निखरती गई है और हम जान पाए हैं कि सब कुछ लगातार बदल रहा है, और इसे भौतिक प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में समझा जा सकता है।

डार्विन के जन्मने से बहुत पहले ही, बहुतों को यह समझ आ गया था



डार्विन न होता तो क्या होता !

कैरन हैडॉक



कि पृथ्वी पर जीवन का विकास हुआ है और वह निरन्तर विकसित हो रहा है। यहाँ तक कि प्राचीन भारत में भी कुछ ऐसे लोग थे जिनका मानना था कि जगत को ईश्वर जैसी किसी बाहरी हस्ती ने नहीं बनाया -- यह तो अपने अन्दरूनी विकास की प्रक्रिया के चलते विकसित हुआ है, गोया कोई फल 'पकता' हो जैसे। परन्तु, एक लम्बे समय तक ऐसे विचार, सैद्धान्तिक अनुमान, और गोलमाल ही बने रहे, बिना किसी ऐसे साक्ष्य के, जो उनकी पुष्टि कर सकें और उनकी व्याख्या कर सकें।

और चार्ल्स डार्विन ने यही तो बदला। अपने जीवन भर के श्रमसाध्य, सुविचारित व वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर उन्होंने जीवन के विकास का विवरण तैयार किया। जैसा कि सन् 1859 में वे लिखते भी हैं, "हर नई प्रजाति, अपने साथ कुछ परिवर्तन लिए, अपनी किसी पूर्वज प्रजाति से उभरती है।"

अपने चहुँ ओर पसरे विशाल जीवन-वैविध्य पर एक नज़र तो डालिए जनाब, आप अचम्भित हो जाएँगे, न सिर्फ इतनी ढेर विविधता से, पर जीवन के विभिन्न रूपों के बीच सिमटी समानता से भी। यह तुलना और भी गज़ब ढाती है जब हम डार्विन के नक्शे-कदम चलते, अतीत में चले उन अरबों जीवों को भी अपनी गिनती में लाते हैं, जिनसे हम बस उनके द्वारा अपने पीछे छोड़ दिए गए जीवाश्मों की सूरत में ही मिल सकते हैं।

जीवन का जाल

उदाहरण के लिए, सावधानी से किए गए अध्ययन दर्शाते हैं कि पक्षी डायनासॉरों से सम्बन्ध रखते हैं। पक्षी और डायनासॉर मगरमच्छों से सम्बन्धित हैं, छिपकली साँपों की रिश्तेदार हैं, और साँप मगरमच्छों के निकट सम्बन्धी हैं और ये सब के सब कछुओं से जुड़े हैं। वगैरह...

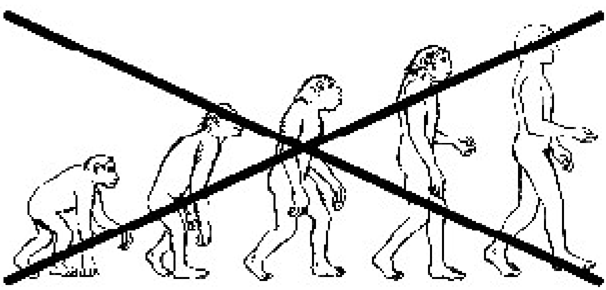
ऐसे अध्ययन हमें तर्कसंगत

वर्गीकरणों की रूपरेखा बनाने की सुविधा देते हैं, और फिर हमें दिखाई पड़ता है कि सभी जीवित प्राणियों का एक-दूसरे से कुछ-न-कुछ रिश्ता बनता तो है। संसार भर की सगरी सभ्यताओं में पुरातन काल से ही विभिन्न प्रजातियों की इन परस्पर-निर्भरताओं व उनके परस्पर-सम्बन्धों को समझने के प्रयास चलते आए हैं। डार्विन ने इन्हीं प्रयासों में अपना योगदान देते हुए उन्हें आगे बढ़ाया।

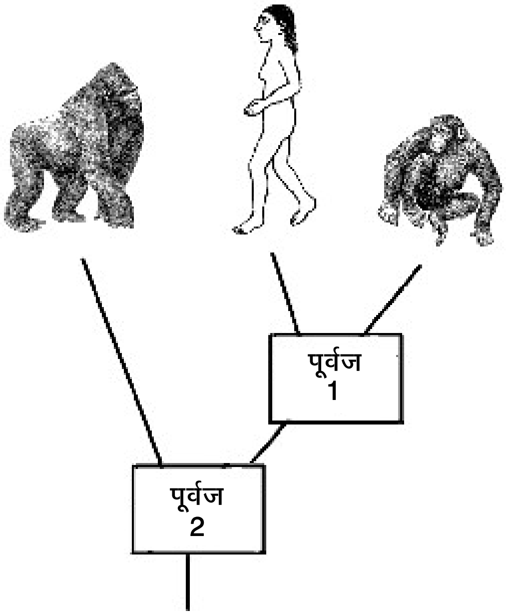
हमें मालूम है कि पृथ्वी पर विद्यमान जीवन के सारे रूपों का मूलाधार, उनकी एक-सरीखी आणविक जैविकी है। अपनी जीन से प्रोटीन बनाने के लिए वे सभी एक ही आनुवांशिक कूट (जैनेटिक कोड) का इस्तेमाल करते हैं। सारी जीन, डी.एन.ए. ॡंखलाओं से बनती हैं। और यहाँ तक कि विभिन्न जीवों की डी.एन.ए. ॡंखलाएँ काफी समानताएँ लिए होती हैं। उदाहरण के लिए, मानवों व वानरों के जीन की डी.एन.ए. मालाएँ 95-98 प्रतिशत हू-ब-हू होती हैं। कारण कि मानवों व वानरों का उद्भव एक ही पूर्वज से हुआ। और फिर भी हमारे यदा-कदा जंगली व्यवहार के बावजूद हम आज भी खुद को उस 'असभ्य बन्दर' का करीबी रिश्तेदार मानने से ना-नुकुर करते हैं।

समानताओं के बावजूद, अविश्वसनीय विविधता भी पसरी पड़ी है इस जहाँ में -- विभिन्न प्रजातियों में, यहाँ तक कि एक ही प्रजाति के भीतर ही, और तो और एक ही प्रजाति के एक ही समुदाय में भी। इनमें से कुछ परिवर्तन वंशागतिशील (inheritable) हैं -- जिन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाया जा सकता है। और यह बात, उन बातों में शामिल रही, जिनकी ओर डार्विन का ध्यान गया और उन्होंने प्राकृतिक चयन जैसी एक प्रक्रिया खोज निकाली, जिसके सहारे जीवन विकसित होता चला गया, चला जा रहा है, चला जाएगा...।

एक प्रजाति ने अगली प्रजाति को जन्म दिया, ऐसा अनुमान इतिहास में चिरन्तन चला आ रहा है। डार्विन की



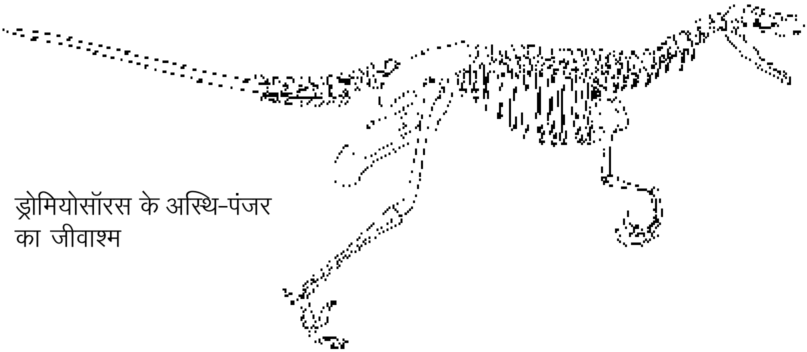
गलत छवि बनना: इस तरह का रेखांकन यह छवि बनाता है कि इन्सान का विकास वानर (ऐप) से हुआ है जबकि ऐसा है नहीं ।



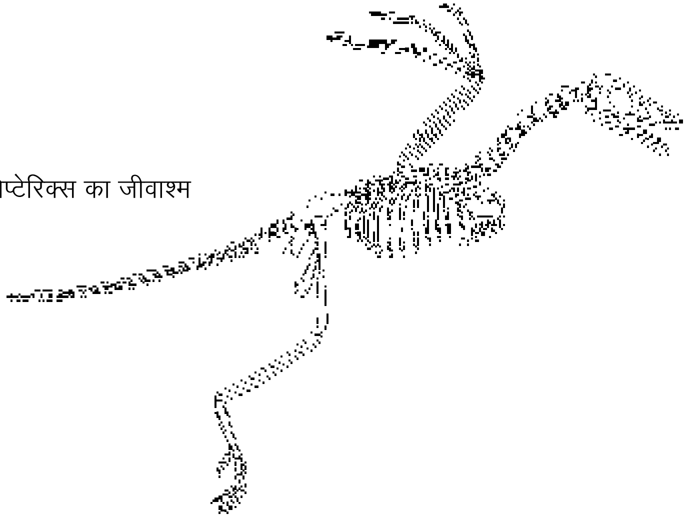
एक जैसे पुरखे इन्सान और वानर के: शायद इन्सान और वानर के जैव-विकास के सह-सम्बन्ध को दिखाने का यह एक बेहतर तरीका हो सकता है।

उपलब्धि महज इतना भर जानना नहीं था कि उत्पत्ति हो चुकी, बल्कि यह जानना था कि प्राकृतिक चयन की तरकीब से इसका यह 'होना' भला किस विध होता है। डार्विन ने एक जगह कहीं लिखा था कि उन्होंने शायद गलत शब्द इस्तेमाल कर लिया है -- उन्हें शायद इस प्रक्रिया को प्राकृतिक संरक्षण का नाम देना चाहिए था। शब्द 'चयन' के साथ समस्या यह है कि इससे यह भी लग सकता है कि उत्पत्ति तो किसी सोद्देश्य चुने हुए मार्ग से या फिर योजनाबद्ध तरीके से प्रेरित होती है। लगता है न?

कृत्रिम चयन से समरूपता भी हमें ऐसी ही किसी गफलत में डाल सकती है। कृषि के शुरुआती दिनों से ही लोग-बाग किन्हीं खास उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए वनस्पति की किस्में और पशुओं की नस्लें तैयार करते आए हैं। उदाहरण के लिए, आज भारत में कुछ अति-महत्वपूर्ण खाद्य-वनस्पतियाँ हैं: पत्तागोभी, फूलगोभी, राई, साग, मूली, मूंग, गाँठ-गोभी, और शलजम (भारत में कम पाई जाने वाली आहार-वनस्पतियाँ हैं - ब्रॉकली, ब्रुसेल्स स्प्राउट्स/चोकीगोभी, रूटबागा/नीली शलजम)। इन सभी का विकास



ड्रोमियोसॉरस के अस्थि-पंजर का जीवाश्म



आर्कियोप्टेरिक्स का जीवाश्म

यदि आधुनिक पक्षी और डायनासॉर के अस्थि-पंजरों की तुलना की जाए तो वे परस्पर सम्बद्ध दिखाई देंगे। इन दोनों के बीच की कड़ी के रूप में आर्कियोप्टेरिक्स के जीवाश्म की खोज वैज्ञानिक कर चुके हैं, जिसमें दोनों के गुणधर्म दिखाई देते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि पक्षी-आर्कियोप्टेरिक्स-डायनासॉर, तीनों प्रजातियों के पुरखे एक सरीखे होने चाहिए। हालाँकि, वैज्ञानिक अभी भी और जीवाश्मों की खोज में लगे हुए हैं ताकि यह समझा जा सके कि इनका विकास किस तरह से हुआ होगा। साथ ही, यह भी खोज का विषय है कि क्या डायनासॉर का विकास किन्हीं प्राक्-पक्षियों से हुआ है या पक्षियों का विकास डायनासॉर से हुआ है?

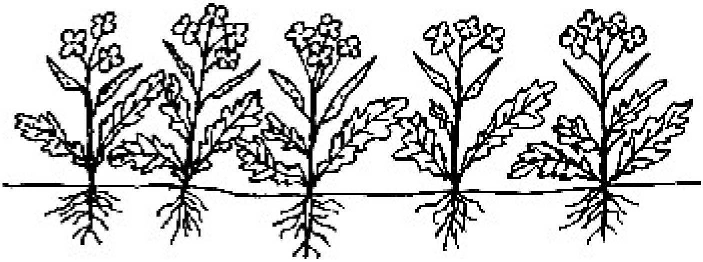
आज के दौर के एक कबूतर का अस्थि-पंजर



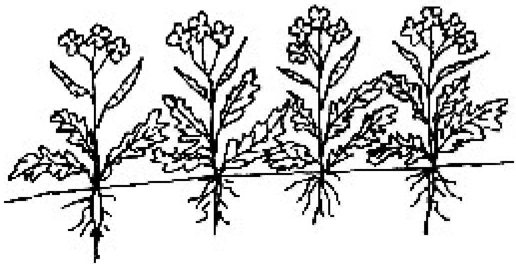
किसानों ने जंगली सरसों के पौधे से किया। पौधों के हर खेत में विविधता होती है। किसानों ने सरसों के पौधों से ऐसे बीज चुने, जिनमें मनवांछित विशिष्टता थी -- कहीं एकदम पास-पास लगी बड़ी-बड़ी पत्तियाँ थीं तो किसी और मामले में मोटी-मोटी जड़ें, बड़े-बड़े डण्ठल, एकदम घने पुष्प-गुच्छ। एक खास विशिष्टिता को चुनने के कोई हज़ारों पीढ़ियों बाद जाकर, एक अलग तरह का पौधा लहलहाता आता है।

चार्ल्स डार्विन ने भी इस ओर संकेत किया कि प्रकृति में भी ऐसी ही एक प्रक्रिया होती है -- पर इरादतन नहीं।

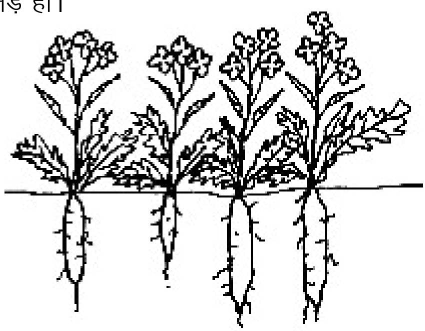
पिछले 200 बरसों में प्राकृतिक चयन को असल में होते हुए देखा गया है। उदाहरण के लिए ब्रिटेन में, चित्तीदार पतंगों की आबादियाँ थीं, जिनमें अधिकांशतः काली चित्तियों वाले सफेद पतंगे थे। लेकिन आकस्मिक घटे किसी जीन उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) के चलते, इनमें से कुछ पतंगे गहरे बादामी रंग के हो चले थे। हल्के रंग के पतंगे अधिक सुरक्षित रहे आए थे क्योंकि शोख दुपहरी की भरी-पूरी रोशनी में लाइकेन का लिहाफ ओढ़े पेड़ों पर आराम करते हुए वे आसानी-से नज़र नहीं आते थे। लेकिन खूब बढ़ते उद्योगों और उनके फलस्वरूप अन्धाधुन्ध बढ़ते प्रदूषण के चलते पेड़ों पर लाइकेन की बजाय कल-कारखानों की कालिख बिछने लगी। सो, आलम यह हो गया कि गहरे-रंगों वाले पतंगे अब अधिक सुरक्षित हो चले, जबकि उजली-रंगत वाले पतंगों की जान पर आ पड़ी। अब चूँकि गहरे-रंगत वाले पतंगे शिकार होने से बच जाते और आगे प्रजनन करते जाते, लिहाज़ा पतंगों के हुजूम में काले-बादामी पतंगे अधिक दिखलाई



जंगली सरसों से मूली प्राप्त करनाः मान लीजिए, हज़ारों साल पहले किसानों ने अपने खेतों में जंगली सरसों की एक किस्म की बुवाई की शुरुआत की। बड़ी संख्या में उगाए जाने वाले जंगली सरसों के पौधों में काफी विविधता मौजूद थी। किसानों को खाने के लिए रसदार-मोटी जड़ वाले पौधे पसन्द थे। इसलिए जब अगले साल बुवाई का वक्त आया तो उन्होंने मोटी-रसेदार जड़ों वाले पौधे के बीजों को बोया।



ऐसा करते हुए कई साल बीत जाने के बाद सरसों के ऐसे पौधों की संख्या बढ़ने लगी जिनमें मोटी-रसेदार जड़ हों।



ऐसे ही अनेक पीढ़ियों के बाद किसानों को मूली प्राप्त हुई। किसानों ने चयन की कृत्रिम प्रक्रिया द्वारा नए किस्म का पौधा प्राप्त किया था।

उपरोक्त तरीके में इन्सानी दखल भी शामिल है लेकिन प्रकृति में जैव-विकास के तहत जो घटता है वो किसी डिज़ाइन या आकांक्षा को ध्यान में रखते हुए प्राप्त परिणाम नहीं होते।



ब्रिटेन के सफेद चित्तीदार और काले चित्तीदार पतंगे जिनके बारे में कहा जाता है कि ब्रिटेन में हुए अत्याधिक औद्योगिकीकरण के चलते इनकी तुलनात्मक आबादी में बदलाव हुए हैं।

पड़ने लगे और खुले रंग वाले पतंगों की तादाद कम होती चली गई।

इस मामले में हालाँकि, प्राकृतिक चयन के कारण कोई नई प्रजाति नहीं जन्मी -- क्योंकि पतंगे की दोनों किस्में लगातार अन्तःप्रजनन करने के काबिल बनी रहीं। हाँ, उनकी आबादी की बनावट (पतंगा-सांख्यिकीः मॉथ डेमोग्राफी) तो ज़रूर बदली।

लेकिन यह बदलाव किसी इरादे से न आया था। हुआ यह कि उत्परिवर्तन यानी म्यूटेशन के चलते मूल आबादी में ही कुछ पतंगों का रंग बदलने लगा था। और यह उत्परिर्वन, पर्यावरण-परिवर्तन के कारण न था। पर्यावरण में बदलाव ने तो पतंगा-आबादी का रंग बदला। गौरतलब बात यह है कि पतंगों ने अपने रंग में परिवर्तन परिवेश से अनुकूलन के लिए नहीं किया था।

सो, प्राकृतिक चयन कोई सोद्देश्य रचनात्मक कर्म नहीं है -- दरअसल, यह तो फकत एक बिना-उद्देश्य, सम्पादकीय-व्यवस्था है। जैव-विकास का कोई लक्ष्य नहीं है। जीवन का कोई भी रूप, जीवन के किसी भी अन्य रूप से अधिक परिपूर्ण नहीं।

जैव-विकास में संयोग की भूमिका ही इसे अद्भुत बनाती है। लेकिन, उत्पत्ति बस, 'यूँ के यूँ ही हो चली' ('लक बाय चांस' की तर्ज़ पर





ब्रिटेन में प्राकृतिक चयन को असल में होते हुए देखा गया है। यहाँ चित्तीदार पतंगों की आबादियाँ थीं, जिनमें अधिकांशतः काली चित्तियों वाले सफेद पतंगे थे। वनस्पतियों पर फैली लाइकेन की आड़ में हल्के रंग के पतंगे सुरक्षित रह पाते थे। उद्योगों और प्रदूषण के चलते वनस्पतियों पर कालिख बिछने लगी। इसलिए दबे-रंगों वाले पतंगे अब अधिक सुरक्षित हो चले, जबकि उजली-रंगत वाले पतंगों की जान पर आ पड़ी।
इस मामले में हालाँकि, प्राकृतिक चयन के कारण कोई नई प्रजाति तो नहीं जन्मी, लेकिन मॉथ डेमोग्राफी ज़रूर बदली। ऊपर का रेखाचित्र औद्योगिकीरण के पहले की स्थिति को दर्शा रहा है जबकि नीचे वाला चित्र अत्याधिक औद्योगिकीकरण के बाद बदले हुए हालात को।

'इवॉल्यूशन बाय चांस') कहने का अर्थ यह कदापि नहीं कि यह आधार-हीन ही घटित हो चली -- हाँ, अवश्य ही वह आधार इसलिए नहीं बनाया या लाया गया था कि कुछ 'खास' किया जाए।

संयोग बनाम ज़रूरत

डार्विन की शोध डेमोक्रिटस (लगभग 350 ई पू) की सूझ-बूझ को नया अर्थ देती है। 'संसार का सब कुछ महज़ संयोग और ज़रूरत का परिणाम है।'

डार्विन ने उत्पत्ति व प्राकृतिक चयन के साक्ष्य, पशुओं व पौधों के उन विविध रूपों का अध्ययन कर जुटाए जो उन्होंने व अन्यों ने गैलापैगोस द्वीप, दक्षिण अमेरिका व अन्य जगहों से एकत्र किए थे। उन्होंने देखा कि किस तरह एक स्थान से दूसरे स्थान

को जाने, बस जाने के चलते पर्यावरण-परिवर्तन की प्रक्रिया में प्राणियों की आबादियाँ नए-नए रूपों में विकसित होती चली गईं। दशकों के श्रमसाध्य अध्ययन, *ऑन द ओरिजन ऑफ स्पीशीज़* के अलावा भी सैकड़ों अन्य प्रकाशनों, अपने समय के जाने-माने वैज्ञानिकों व चिन्तकों के साथ हज़ारों पत्रों के आदान-प्रदान के बाद जाकर डार्विन को यह स्पष्ट हुआ कि कोई भी चीज़ अचर, अपरिवर्तनशील नहीं है - सारा जीवन निरन्तर बदलता रहता है।

इस नई समझ, नए ज्ञान, नए बोध ने धार्मिकी को चुनौती दे डाली। विज्ञान के साक्ष्य, कुछेक धार्मिक आस्थाओं के खिलाफ जाते थे। अब हमको मालूम है कि (जन्नत की हकीकत क्या है!) खुद जीवन ही साधारण स्व-जनित रसायनों के चलते अस्तित्व में आया। फिर ज्यों-ज्यों जीवन विकसित हुआ, चेतना, जानकारी भी त्यों-त्यों विकसित होती चली गई। अनुसन्धानों के चलते हम लगातार जानते जा रहे हैं कि साधारण जीवों में तंत्रिका-तंत्र किस तरह काम करता है, और तो और, मानवीय चेतना को भी ठीक उन्हीं बुनियादी भौतिक प्रक्रियाओं की भाषा में समझा जा सकता है, जो प्रक्रियाएँ अत्यधिक जटिल तंत्रों में संगठित हैं।

उत्पत्ति की बुनावट की यह समझ हमें अहसास कराती है कि जीवन हमारी अब तक की तमाम कल्पनाओं से कहीं बहुत अधिक हैरतअंगेज़ है। जैसा कि डार्विन कह गए हैं, "इतनी साधारण शुरुआत से इतने खूबसूरत, इतने अद्‌भुत, इतने अनन्त रूप विकसित हुए, और हुए चले जाते हैं।"

कैरन हैडॉकः स्वतंत्र चित्रकार, महिन्द्रा इंटरनेशनल स्कूल, पुणे में अध्यापक, बायोफिज़िक्स में अध्ययन। शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

अँग्रेज़ी से अनुवादः मनोहर नोतानीः शिक्षा से स्नातकोत्तर इंजीनियर। पिछले 20 वर्षों से अनुवाद व सम्पादन उद्यम से स्वतंत्र रूप से जुड़े हैं। भोपाल में रहते हैं।

सभी स्कैचः कैरन हैडॉक।

यह लेख 'द हिन्दु' समाचार पत्र, 15 फरवरी, 2009 के मैगज़ीन खण्ड में छपे लेख का लेखक द्वारा विकसित व परिष्कृत रूप है।

अगले पृष्ठ पर पढ़िए - जैव-विकास का मार्ग सिर्फ पूर्णता की ओर नहीं जाता।

जैव-विकास का रास्ता सिर्फ पूर्णता की ओर ही नहीं जाता

आम तौर पर हम जैव-विकास को 'पूर्णता की ओर यात्रा' के चश्मे से देखते हैं। वास्तव में, यह नज़रिया जैव-विकास की सही तस्वीर सामने नहीं ला पाता। यहाँ मैं अपनी बात को सिलसिलेवार तरीके से कहूँगी।

वैसे देखा जाए तो इन्सान भी एकदम मुक्कमिल या परफेक्ट नहीं है। मसलन, हम सीधे चल तो सकते हैं मगर ऐसे में हमें पीठ दर्द हो सकता है क्योंकि हमारी पीठ की हड्डी सीधे खड़े रहने के बहुत अनुकूल नहीं है। यूँ तो इन्सान काफी तेज़ी से दौड़ सकता है मगर लम्बे समय तक पर्याप्त ऑक्सीजन की उपलब्धता के बिना जीवित नहीं रह सकता। पेल्विस की संरचना के चलते प्रसव के दौरान महिलाओं को काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है। हमारे शरीर में प्रतिरक्षा प्रणाली होती है जो हमें बाह्य संक्रमण से सुरक्षा प्रदान करती है लेकिन कभी-कभी हमारा प्रतिरक्षा तंत्र हमारी खुद की कोशिकाओं और ऊतकों पर ही आक्रमण कर बैठता है, जिससे होने वाली एक बीमारी है - आर्थ्राइटिस (गठिया होने के कई कारणों में से यह भी एक कारण है)। इसी तरह कुछ लोगों में मलेरिया प्रतिरोधी जीन होते हैं लेकिन इसके होने से भी एक बीमारी पनपती है, सिकल सेल एनीमिया (या यह कहें कि सिकल सेल एनीमिया वाले व्यक्ति में मलेरिया की सम्भावना कम हो जाती है)।

हर जीव कुछ-न-कुछ मामलों में अपूर्ण होता है जैसे हम पानी से ऑक्सीजन नहीं ले सकते, तो घोड़े उड़ नहीं सकते। सबसे पहले तो सवाल यही उठता है कि आखिर पूर्ण होने का अर्थ क्या है। इन्सान क्या मछली, चिड़िया या वानर से ज़्यादा बेहतर है? क्या मछली इन्सान से ज़्यादा परिपूर्ण है क्योंकि वो पानी में तैर सकती है या फिर चिड़िया क्योंकि वो उड़ सकती है?

कौन ज़्यादा बेहतर है, इन्सान या मधुमक्खियाँ? क्या इन्सान शहद बना सकता है या फिर क्या वह उड़ सकता है? इन्सान दुनिया की सबसे ज़्यादा संख्या में पाई जाने वाली प्रजाति भी नहीं है। और न ही इन्सान की गिनती सबसे तेज़ धावक या मज़बूत शरीर वाले या सबसे बड़े दिमाग वाले के रूप में की जाती है। तो भी इन्सान बेहतर क्यों? जैसा कि डार्विन ने कहा भी है कि एक जीव से दूसरे को बेहतर मानना बड़ा ही बेतुका है।

क्या जैव-विकास आत्मा के स्थानान्तरण-सा है?

क्या जैव-विकास बिलकुल ऐसा ही है जैसा कि लोग हज़ारों सालों से विश्वास करते आए हैं? यानी जैसे ही एक जीव की मृत्यु होती है उसकी आत्मा किसी दूसरे जीव में तब्दील हो जाती है। इस मान्यता के अनुसार सारे जीव, पेड़-पौधे, यहाँ तक कि पानी, धूल, और हवा आपस में जुड़े हुए हैं और जीवन के उन्हीं नियमों के अन्तर्गत जीवन जीते हैं। सभी ज़िन्दगियाँ अनगिनत परिवर्तनों से होकर गुज़रती हैं।

लोगों का मानना है कि पुनर्जन्म पदार्थगत सच्चाई नहीं है बल्कि इसका सम्बन्ध आत्मा से है। मान्यता यह है कि जब किसी जीव की मृत्यु होती है तो उसकी आत्मा एक नए शरीर में प्रवेश कर जाती है जो जीवन का दूसरा रूप होता है।

जीवन को लेकर हमारी यह सोच विकास की मौजूदा वैज्ञानिक समझ से बिलकुल फर्क है। विकास की मौजूदा समझ के मुताबिक व्यक्ति या व्यक्ति की आत्मा नहीं बल्कि जनसंख्या में बदलाव होता है। यहाँ जनसंख्या के मायने हैं - एक ही समय में, एक ही स्थान में रहने वाली एक ही प्रजाति के जीवों का समूह। सभी जनसंख्या समूहों में विविधता (वेरिएशन) होती है। और यह भी एक सच्चाई है कि दो जीव हू-ब-हू एक जैसे नहीं हो सकते। बिना इस विविधता के न तो जैव-विकास (बल्कि जीवन भी) बना नहीं रह सकता है।

किसी पूर्ववर्ती जनसंख्या समूह के भीतर किन्हीं जीव विशेष में विविधता दिखाई देने लगती है। कई दफा यह विविधता इस हद तक पहुँच जाती है कि ये जीव अपनी मूल जनसंख्या के साथ प्रजनन के रिश्ते भी कायम नहीं रख पाते। इन हालात में एक नए जनसंख्या समूह का उद्भव होता है।

पुनर्जन्म की कहानी रूपक के रूप में तो काम करती है मगर विज्ञान की कसौटी पर सत्यापित नहीं हो पाती। विज्ञान की विधा में हम सवाल करते हैं, साथ ही अवलोकनों और भौतिक यथार्थ की पड़ताल करके सवालों के जवाब पाने की चेष्टा करते हैं।

हम जानते हैं कि जैव-विकास होता है क्योंकि हम जैव-विकास और जैव-विकास के प्रभावों का अवलोकन करते हैं। सच कहूँ तो जैव-विकास के नज़रिए के बिना जीव-विज्ञान में कुछ भी अर्थपूर्ण नहीं हैं।

- कैरन हैडॉक

अँग्रेज़ी से अनुवादः अम्बरीष सोनीः *'संदर्भ' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।*